शोध मंथन, Impact Factor 6.726 (SJIF), UGC No. 40908 ISSN: (P): 0976-5255 (e): 2454-339X
Vol. X, No.II, pp (607-613) April - June 2019

भारतीय राजनीतिक चिन्तन में स्वामी दयानन्द सरस्वती के राजनीतिक चिन्तन की अवधारणा

डॉ. विक्रम सिंह
जयपुर (राज.)
Email:drvikramdevpura@gmail.com

सारांश

स्वामी दयानन्द ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में एक पूरा समुल्लास राज्य व षासन विषय में लिखा है। इसमें उन्होंने राजनीति की उसी परिपाटी का अनुसरण किया है जिसका प्रतिपादन मनुस्मृति तथा अन्य प्राचीन राजनीति विशयक ग्रन्थों में किया गया है। उन्होंने राजा शब्द की व्याख्या 'निर्वाचित सभापति' के रूप में की है। वेदों के एक मंत्र की व्याख्या करते हुए स्वामी दयानन्द ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए है ''इसका अभिप्राय यह है कि एक को स्वतंत्र राज्य का अधिकार नहीं देना चाहिए किन्तु राजा को सभापति, तद्धीन सभा, राजा और सभा प्रजा के अधीन और प्रजा–राजसभा के अधीन रहे। उनके राजनीतिक पिचार उनके द्वारा किए हुए वेदभाष्य तथा ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका जैसे ग्रन्थों में मिलते है। स्वामी दयानन्द एक तंत्र शासन के बहुत विरूद्ध थे उन्हें ऐसा शासन ही स्वीकार्य था, जिसमें सब कार्य सभा द्वारा विचार विमर्श के अनन्तर ही किए जाए।

एक ऐसे समय मे जब जन साधारण की देश के शासन कार्य में साझेदारी नहीं थी, स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में लिखा है कि ''राजाओं के राज में किसान आदि परिश्रम करने वाले है और राजा उनका रक्षक है, जो प्रजा न हो तो राजा किसका?'' आगे वे कहते है कि जो प्रजाजन राजा को अन्याय करने व अनीति के मार्ग पर चलने से रोकते हैं– वे सब सुख प्राप्त करते हैं। वर्तमान परिस्थिति में दयानन्द के राजनीतिक विचार विशेष प्रासंगिकता रखते है। आज के राजनेता व शासक उनके विचारों से देश के प्रशासन को सुचारू ढ़ंग से चलाने की प्रेरणा ले सकते है तथा राज्य के वास्तविक उद्देश्य को प्राप्त कर सकते है और सच्चे अर्थों में जनकल्याण को बढ़ावा दे सकते है।

प्रस्तावना

स्वामी दयानन्द 1824 ई. में कठियावाड़ (गुजरात) के मोरवी नामक नगर में उत्पन्न हुए थे। वे सामवेदी ब्राहम्ण थे। पितृ गृह में निवास करने के काल में उन्होंने शुक्ल चतुर्वेद का पूर्ण अभ्यास किया था तथा पूर्व मीमांसा और कर्म काण्ड के कतिपय ग्रन्थों का भी अवलोकन किया

था। इक्कीस वर्ष की आयु में वे वैवाहिक जीवन के बन्धनों से बचने के लिए घर छोड़ कर भाग गये। 1845 से 1860 तक वे ज्ञान प्रकाष तथा अमरत्व की खोज़ में विभिन्न स्थानों में घूमते रहे। इस बीच वेदान्त–सार तथा वेदान्त–परिभाषा का परमानन्द परमहंस से उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया। तंत्र के कुछ ग्रन्थों की बीभत्सता से वे खिन्न चित्त हो गये। 'हठ योग प्रदीपिका' 'योग बीज' आदि पुस्तकों का उन्होंने स्वाध्याय किया। 1860 में उन्होंने मथुरा में स्वामी विरजानन्द सरस्वती के चरणों में बैठ कर पाणिनि तथा पंतजली का अध्ययन प्रारम्भ किया। वहां उन्होंने ढ़ाई वर्श तक अध्ययन किया। 1864 में उन्होंने सार्वजनिक रूप से उपदेष देना प्रारम्भ कर दिया। 10 अप्रेल, 1875 में बम्बई में प्रथम आर्य समाज की स्थापना की।

1ण भारत की राजनीतिक दशा– स्वामी दयानन्द के समय भारत ब्रिटिश शासन के पराधीन था। इस शासन के अन्तर्गत स्वशासन की कोई संस्थाएँ न थी। भारत में इस समय लोकतंत्र अज्ञात था और यूरापे में भी लोकतंत्र आदिम अवस्था में था। भारत में राष्ट्रीयता की भावना का विकास भली भांति नहीं हुआ था। भारतीयों का अपने धर्म व संस्कृति पर जो स्वाभिमान था, उसको नष्ट करने का प्रयास भी अंग्रेज शासकों ने किया। अंग्रेजों द्वारा जिस शिक्षा पद्धति को भारत में प्रचारित किया गया, उसका उद्देश्य यही था कि उसकी भाषा, संस्कृति और साहित्य आदि की उत्कृष्ठता का सिक्का भारतीयों के दिल व दिमाक पर ज़मा दिया जाए ताकि भारतीयों का अपने धर्म व संस्कृति के प्रति स्वाभिमान नष्ट हो जाए, उनमें हीन भावना उत्पन्न हो जाए। उठारहवीं शताब्दी में पश्चिमी यूरोप में हुए वैज्ञानिक आविष्कारों से वहां औद्योगिक क्रांति हुई और इसकी तुलना में भारत औद्योगिक एवं वैज्ञानिक प्रगति के क्षेत्र में पश्चिमी ज़गत से बहुत पिछड़ गया। अंग्रेज शासकों ने इस स्थिति का अनुचित लाभ उठाया तथा अपने आर्थिक लाभ व स्वार्थ सिद्धि के लिए भारत के इस पिछड़ेपन को बनाए रखा। ब्रिटिश शासकों की नीति से तथा राज शक्ति के उपयोग से भारत के शिल्प, उद्योग व्यवसाय व व्यापार नष्ट हो गए तथा देश की आर्थिक दशा निरन्तर बिगड़ती गई। भारत में अंग्रेजी शासन का सूत्रपात सन् 1757 में प्लासी के युद्ध द्वारा हुआ था। जिसके परिणाम स्वरूप बंगाल पर ईस्ट इंडिया कम्पनी का षासन स्थापित हो गया था। प्लासी के युद्ध के 100 वर्ष पश्चात्, 10 मई, 1857 को मेरठ में गदर अथवा स्वाधीनता संग्राम का एक भयंकर क्रांति के रूप में विस्फोट हुआ। इस क्रांति की चिंगारिया दिल्ली, आगरा, बनारस, इलाहाबाद, कानपुर, अवध, बुन्देलखण्ड़, रूहेलखण्ड़, बिहार और छोटा नागपुर तक फैली। भारत में अंग्रेजी शासन का अंत कर देने के लिए किये गये इस विद्रोह में अनेक विभूतियाँ उभरकर सामने आई। अनेक योद्धाओं, हुतात्माओं तथा सैन्य प्रतिभाओं ने इस विद्रोह का नेतृत्व किया तथा मातृभूमि की स्वाधीनता हेतु अपने जीवन बलिदान किए।

सन् 1858 में इंगलैण्ड की महारानी विक्टोरिया ने भारत का शासन ईस्ट इंडिया कम्पनी से अपने हाथ में लिया। परिणामस्वरूप गवर्नर व उसकी परिषद् के हाथ में महारानी के नाम पर भारत का शासन चलाने की सत्ता आ गई। ब्रिटिश साम्राज्ञी द्वारा

भारत के शासन के अधिग्रहण के बाद आधी सदी बीत जाने पर अंग्रेज शासनाधिकारियों ने किसी भारतीय को षासन चलाने वाली उच्च सत्तात्मक संस्थाओं में प्रवेश नहीं दिया और भारत का शासन भारत में नियुक्त योग्यतम अफ़सरों का 'अल्पतंत्र शासन' ही था। भारतीय सदस्यों को वित्त तथा राजस्व जैसे महत्वपूर्ण विभाग नहीं सौंपे जाते थे। गवर्नर जनरल की कैबिनेट में भारतीयों का कोई स्थान न था। कैबिनेट को सलाह देने के लिए जन प्रतिनिधियों की कोई सलाहकार समिति गठित नहीं की गई थी। कैबिनेट का जनता के साथ सम्पर्क स्थापित करने का कोई संवैधानिक तरीका निम्रित नहीं किया गया था।''[1] इस प्रकार स्वामी दयानन्द के समय भारत देश का पूरी तरह से पराभव व राजनीतिक अद्योपतन हो चुका था। उस समय एक प्रगतिशील व शिक्षित भारतीय की उच्चतम आकांक्षा अधीनस्थ अवर स्तरीय सरकारी नौकरी को प्राप्त कर लेना था। जहां तक शिक्षित भारतीयों की राजनीतिक अभिलाषा का संबंध था, वे ब्रिटिश शासन से स्वतंत्र होने की कल्पना तक न करते थे। उनकी उच्चतम राजनीतिक महत्वाकांक्षा भारत के प्रशासन को चलाने में सरकार के काम में भागीदारी प्राप्त करना था।

स्वामी दयानन्द अपनी मातष भूमि के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक अद्योपतन से अत्यधिक संतृप्त थे। वे इस उद्योपतन के कारणों का विश्लेषण करते हुए इसके पुनरूद्धार का दिशा निर्देश भी करते है। वे मानते थे कि भारत वर्ष का अतीत अत्यन्त गौरवशाली था और वे इस विगत गौरव को पुनरूज्जीवित करना चाहते थे। उनके शब्दों आदि प्रमाणों से सिद्ध है कि सृष्टि से लेकर महाभारत पर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभौम राजा आर्य कुल में ही हुए थे। अब इनके सन्तानों का अभाग्योदय होने से राज भ्रष्ट होकर विदेशियों के पदाक्रान्त हो रहे है।[2] भारत के इस प्रकार पददलित होने के कारणों के विश्लेषण का प्रयास करते हुए वे कहते है, ''इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी अविद्वान लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता और यह संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब बहुत सा धन, असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है, तब आलस्य, पुरूषार्थ रहितता, ईर्ष्या, द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है। इससे देश में विद्या सुशिक्षा नष्ट होकर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन बढ़ जाते है, जैसे कि मद्य–मांस सेवन, बाल्याकाल में विवाह और स्वेच्छाचारादि दोष बढ़ जाते है और जब युद्ध विभाग में युद्ध विद्या कौशल और सेना इतनी बढ़े कि जिसका सामना करने वाला भूगोल में दूसरा न हो, तब उन लोगों में पक्षपात, अभिमान बढ़कर अन्याय बढ़ जाता है। जब ये दोष हो जाते है तब आपस में विरोध होकर अथवा उनसे अधिक दूसरे छोटे कुलों में से कोई ऐसा समर्थ पुरूष खड़ा होता है कि उनका पराजय करने में समर्थ होवे, जैसे मुसलमान बादशाही के सामने शिवाजी, गोविन्द सिंह जी ने खड़े होकर मुसलमानों के राज्य को छिन्न भिन्न कर दिया।[3] चरित्र की जो उत्कृष्टता रामायण काल में रघुवंशियों में मिलती है, वह महाभारत काल में कौरवों में दिखाई नहीं देती पर चारित्रिक पतन यही नहीं रूका। 15वीं शताब्दी के हिन्दू अपने आपको सूर्यवंशियों व चन्द्रवंशियों के वंशज कहते

थे, परन्तु चारित्रिक दृष्टि से अपने पूर्वजों की परछाई मात्र थे। मदिरापान व वैश्यागमन उनके जीवन का एक प्रमुख भाग बन गया था तथा इन्ही दुर्व्यसनों में उनकी शक्तियों का अपव्यय होता था। स्वामी दयानन्द के समय राजपुताना के राजाओं की स्थिति भी शौचनीय थी, उनमें न तो अपने पूर्वजों वाली नैतिक उच्चता और सद्गुण ही थे और न ही शूरवीरता और पराक्रम। स्वामी जी का यह मन्तव्य था कि भारतीय समाज के पतन का मूल कारण भारतीय समाज की चारित्रिक गिरावट थी और चारित्रिक गिरावट के कारण उनके शब्दों में 'आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना व बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुलक्षण वेद विद्या का अप्रचार आदि कुकर्म है।''[4]

2. स्वराज का आदर्श– स्वामी दयानन्द का समय वह समय था जबकि उपनिवेशवाद भारतवर्ष में जड़ पकड़ रहा था, तथा पाश्चात्य विद्वानों ने यह प्रतिपादन करना शुद्ध कर दिया था कि गौरांग लोग सब मनुष्यों में उत्कृष्ट है और एशिया व अफ्रीका के निवासियों को सभ्य बनाने का कार्य ईश्वर द्वारा उनके सुपुर्द किया गया है। अतः यह सर्वथा स्वाभाविक व उचित है कि पाश्चात्य देश एशिया और अफ्रीका पर शासन करे। पाश्चात्य विद्वानों के इस मन्तव्य का प्रभाव अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीयों पर पड़ने लगा था और उच्च अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीय अंग्रेजों के इस विदेशी शासन को अपने देश के लिए न केवल स्वाभाविक व समुचित मानने लगे अपितु यह भी समझने लगे थे कि यह षासन उनके लिए वस्तुतः हितकारी है। ऐसे समय में दयानन्द ने भारत की पूर्ण राजनीतिक व सांस्कृतिक स्वतंत्रता का स्वप्न देखा। उन्होंने भारतीयों की इस हीन भावना को दूर करने का प्रयत्न किया। उन्होंने अपने देश वासियों का ध्यान भारत के अतीत कालीन गौरव की तरफ आकृष्ट कर यह प्रतिपादन किया कि यह देश विश्व का शिरोमणी देश है। इसकी सभ्यता, धर्म और संस्कृति सर्वोत्कृष्ट है। कभी संसार के सभी देशों पर यहां के आर्यों का राज्य था। विश्व के दूरस्थ देशों में भी इसके धर्म व संस्कृति का प्रचार था। ज्ञान विज्ञान में भी भारत सबका अग्रीणी था और वह समय दूर नहीं है जबकि यह देश पुनः अपने प्राचीन विलुप्त गौरव को प्राप्त कर लेगा। अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यो का अखण्ड़, स्वतंत्र स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रांत हो रहा है। कुछ थोड़े राज्य स्वतंत्र है। दुर्दिन जब आता है, तब देशवासियों को अनेक प्रकार के दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरी उत्तम होता है, अथवा मनमतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी सुखपूर्ण नहीं है।[5]

राष्ट्रीय स्वाधीनता की भावना स्वामीजी के हदय में इतनी बहुमूल थी कि वेदों का भाष्य करते हुए भी उन्होंने अनेक मंत्रों में राष्ट्रीय, स्वाधीनता के लिए प्रार्थना की है। यजुर्वेद भाष्य में वे लिखते है कि मनुष्य को चाहिए कि पुरूषार्थ करने से पराधीनता

छुड़ा के स्वाधीनता निरन्तर स्वीकार करे।[6]

स्वामी दयानन्द देशवासियों में राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करना चाहते थे कि सभी निवासियों में राष्ट्रीय एकता हो, सभी में अपने देश के प्रति ममता की सत्ता हो, सभी इस देश को अपनी मातृभूमि व देव भूमि माने ताकि राष्ट्र प्रगति करे उनके शब्दों में ''जिस राज्य में श्रेष्ठ, मध्यस्थ और निकृष्ट अर्थात नीची श्रेणी में वर्तमान धर्मात्मा विद्वान और अविद्वान लोग अपने स्वराज्य के प्रिय, शत्रुओं का नाश करने वाले, अपने स्वामी के भक्त है वहां राष्ट्र सदा बढ़ता है, ऐसा जानना चाहिए।''[7] स्वामी दयानन्द ने भारतवासियों के समक्ष स्वराज्य का आदर्श प्रस्तुत किया। उनके अनुसार स्वराज्य का अर्थ पूर्ण राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त प्रभु सत्ता सम्पन्न राज्य था। आर्याभिविनय में वे युक्तियुक्त राजनीतिक बुद्धिमता पर आधारित स्वराज्य के उत्कृर्ष के लिए प्रार्थना करते हुए कहते है; ''हे कृपा सिन्धों भगवन हम पर सहाय करो, जिसमें सुनीतियुक्त होके हमारा साम्राज्य अत्यन्त बढ़े।''[8] फिर आगे वे लिखते है ''हे महाराजधिराज परब्रह्मकृ अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हो तथा हम लोग पराधीन कभी न हो।''[9] 1857 का स्वाधीनता संग्राम भी सफल नहीं हो सका और भारत में अंग्रेजी शासन की नींव और भी सुदृढ़ हो गई। इसके पश्चात सन् 1860–62 में बंगाल में नील की खेती करने वाले कूलियों ने विद्रोह किया और सन् 1871–72 में पंजाब में कूका विद्रोह हुआ। परन्तु यह विद्रोह तथा बंगाल नेशनल लीग जैसी विभिन्न संस्थाएं किसी राष्ट्रीय चेतना का परिणाम न थी और न ही इसका स्पष्ट उद्देश्य भारत में भारतीयों की प्रभुसत्ता सम्पन्न स्वतंत्र राज्य की स्थापना करना ही था। इन आन्दोलनों के नेताओं के पास भारत की एकता राश्ट्रीय अखण्ड़ता तथा पूर्ण स्वराज्य की कोई संकल्पना ही न थी। स्वामी दयानन्द ही प्रथम स्वप्नद्रष्टा थे, जिन्होंने भारतीयों द्वारा स्वशासित अखण्ड़ भारत की सुन्दर झांकी प्रस्तुत की। इस संयुक्त भारत को वह आर्यावर्त कहते है तथा इसकी भौगोलिक सीमाओं का वर्णन इस प्रकार करते है ''उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्यांचल, पूर्व और पश्चिम में समुद्र तथा सरस्वती, पश्चिम में अटक नदी, पूर्व में दृषद्वती जो नेपाल के पूर्व भाग पहाड़ से निकलकर बंगाल में आसाम के और ब्रह्मा के पश्चिम ओर होकर दक्षिण के समुद्र में मिलती है, जिसको ब्रह्मपुत्र कहते है और जो उत्तर के पहाड़ों से निकलकर दक्षिण के समुद्र की खाड़ी में अटक मिली है। हिमालय की मध्य रेखा से दक्षिण और पहाड़ों के भीतर और रामेश्वर पर्यन्त विन्ध्यांचल के भीतर जितने देश है, उन सबको आर्यावर्त इसलिए कहते है कि यह आर्यावर्त देव अर्थात विद्वानों के बसाया और आर्यजनों के निवास करने से आर्यावर्त कहलाया है।''[10] स्वामी दयानन्द ''ब्रिटिश भारत'' तथा भारतीय भारत जैसे राजनीतिक वर्गीकरण को मान्यता नहीं देते। उनके अनुसार हिमालय से रामेश्वरम तक यह देश एक ही है तथा इसका नाम आर्यावर्त है।

3. स्वदेशी का आदर्श– स्वामी दयानन्द स्वदेशी के प्रथम नायक थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने वर्ष 1908 औपचारिक रूप से ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार तथा भारतीयों द्वारा स्वदेशी वस्तुओं के उपभोग करने का संकल्प प्रस्ताव पारित किया था परन्तु स्वामी दयानन्द ने इससे बहुत पहले ही स्वदेशी के पक्ष में अपनी आवाज़ उठाई थी। इस प्रकार स्वामी दयानन्द स्वदेशी के कट्टर समर्थ थे, वह अपने व्यक्तिगत उदाहरण अपने लेखों तथा भाषणों द्वारा भारत में निर्मित वस्तुओं का उपयोग करने की प्रेरणा, प्रोत्साहन व उपदेश देते थे। जोधपुर के महाराजा ने उनकी स्वदेशी कपड़े का प्रयोग करने की सलाह मान ली थी। फलस्वरूप राज्य में सभी सरकारी कर्मचारी स्वयं महाराजा से लेकर चपरासी तक सभी पदाधिकारियों एवं जोधपुर के विशिष्ट जनगण ने मारवाड़ में बनी खादी का प्रयोग करना अंगीकार किया। इस प्रकार बंगाल में स्वदेशी का नारा गुंजने से पहले, मारवाड़ खादी पहने खड़ा दिखाई देता है।[11]

4. स्वामी दयानन्द के जनभाषा हिन्दी संबंधी विचार– स्वामी जी के अनुसार प्रत्येक राष्ट्र की एक राष्ट्रभाषा होनी चाहिए, जो जहां शिक्षा का माध्यम हो वहां साथ ही सब राजकीय कार्यों में प्रयुक्त हो, तथा देश के सभी प्रदेशों व लोगों की सम्पर्क हो। स्वामी दयानन्द ने अपने ग्रन्थ हिन्दी भाषा में लिखे और उन्होंने ही सर्वप्रथम हिन्दी भाषा में वेदों का भाष्य किया। उनका मन्तव्य था कि भाषा की एकता के अभाव में राजनीतिक स्वतंत्रता को प्राप्त करना सम्भव नहीं है। वह लिखते है परन्तु भिन्न–भिन्न भाषा, पृथक–पृथक शिक्षा, सांस्कृतिक भिन्नता, अलग–अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय (स्वतंत्रता प्राप्ति का उद्‌देश्य) सिद्ध होना कठिन है।[12] यह बात ध्यान देने योग्य है कि उन्होनें देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी भाषा को जन–संपर्क के लिए उपयुक्त भाषा माना तथा इसे आर्यभाषा कहा।

संदर्भ ग्रंथ

1 सी.वाई चिन्तामणी, *इण्डियन पालिटिक्स सिन्स दी म्यूटिनी* (लंदन, जार्ज ऐलन एण्ड अनबिन संस्करण 1940 पृष्ठ संख्या **253**

2 *दयानन्द सरस्वती,* सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ संस्करण अजमेर 1950 एकादश समुल्लास, पृष्ठ संख्या–**338**

3 *दयानन्द सरस्वती,* सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ संस्करण अजमेर 1950 एकादश समुल्लास, पृष्ठ संख्या–**337**

4 *दयानन्द सरस्वती* सत्यार्थ प्रकाश, अजमेर चतुर्थ संस्करण–1950 दशम समुल्लास, पृष्ठ संख्या–**326**

5 *दयानन्द सरस्वती* सत्यार्थ प्रकाश, अजमेर चतुर्थ संस्करण 1950 अश्टम समुल्लास, पृष्ठ संख्या–**274**

6 **दयानन्द सरस्वती** यजुर्वेद भाष्य 1 से 4 तक वैदिक यंत्रालय अजमेर 1958–1961–15. 5

7 *दयानन्द सरस्वती– ऋग्वेदादिभाष्य* वैदिक मंत्रालय अजमेर 1954–1967, 4.25.8

8 *दयानन्द सरस्वती आर्याभिविनय,* आठवां संस्करण रामलाल कपूर ट्रस्ट अमृतसर 1951, पृष्ठ संख्या–22

9 *दयानन्द सरस्वती आर्याभिविनय,* आठवां संस्करण रामलाल कपूर ट्रस्ट अमृतसर 1951, पृष्ठ संख्या–81

10 *दयानन्द सरस्वती,* सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ संस्करण अजमेर, 1950 अष्टम समुल्लास, पृष्ठ संख्या 271–272

11 **हर विलास शारदा लाईफ ऑफ स्वामी दयानन्द**, द्वितीय संस्करण, अजमेर 1954, पृष्ठ संख्या–323

12 *दयानन्द सरस्वती,* सत्यार्थ प्रकाश, चतुर्थ संस्करण अजमेर 1950 अष्टम समुल्लास, पृष्ठ संख्या–274